धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 45 रुपये
अंक 135
आश्विन,
2080 वि. सं.

पितृ-भक्ति विशेषांक

Facsimile copy of the particular article

पितरों का श्राद्ध और तर्पण क्यों है आवश्यक?

तीर्थरूप पितृभक्ति

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो–जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com

भलें हम जीवित माता-पिता को पितर न मानें, पर इससे इनके प्रति हमारे कर्तव्य कम नहीं होते हैं। पुराणों ने माता-पिता को देवता मान लिया है, सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिनिधि मान लिया है, तभी तो गणेजी की वह कथा प्रचलित है, जिसमें उन्होंने माता-पिता की परिक्रमा कर पृथ्वी की परिक्रमा का फल प्राप्त किया था। पौराणिक कथाओं की यही शैली है। वह मित्र की भाँति रोचकता के साथ हमें कर्तव्यों का उपदेश देती है। लेखक ने यहाँ माता-पिता के महत्त्व का निरूपण शास्त्रीय तथा पौराणिक शैली में किया है। पितृभक्ति का विवेचन करते हुए लेखक ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, नचिकेता तथा भगवान् गणेशजी का उदाहरण देकर लौकिक तथा पारलौकिक महत्त्व की व्याख्या की है। इनमें भी कतिपय प्रमाणों के आधार पर माता को पिता से भी गौरवमयी सिद्ध किया है।

अपने गुरुजनों, माता-पिता को सम्मान करना हमारी नैतिक-शिक्षा का एक अंग है। साक्षरता शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता, बल्कि यह एक साधन है, मापदण्ड है। शिक्षा की अन्तरात्मा में तो चारित्रिक पुरुषार्थ की झलक मिलनी चाहिये, जिसमें उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने-चालने, वाणी-व्यवहार आदि सभी शामिल हैं। पुनः यह भी कहा गया है– जहाँ धर्म नहीं, वहाँ ज्ञान बेकार है। धर्मज्ञान के बिना जीने का कोई अर्थ ही नहीं, इसे तो अधिकार के साथ प्राप्त कर जीवन को धन्य बनाना ही पुनीत कर्तव्य है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।[1]

'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वही धर्म है।' दक्ष-स्मृति में वर्णित 'नव-नवक' एक शिक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण सूत्र है, जिनमें व्यक्ति के सदाचार एवं व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित नौ-नौ बातों की एक शृंखला है, जिनमें से एक है– नौ अक्षय सफल बातें– जो नौ प्रकार के व्यक्तियों को कुछ भी दिया जाता है, वह सफल अर्थात् अक्षय होता है–

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत्॥[2]

अर्थात् 1. माता, 2. पिता, 3. गुरु, 4. मित्र, 5. विनयी, 6. उपकार करने वाला,

1 वैशेषिक सूत्र 1.2.
2 दक्षस्मृति 3.15.

7. दीन, 8. अनाथ एवं 9. सज्जन साधु-महात्मा व्यक्ति। यदि माता, पिता और गुरु इन तीनों में प्रत्यक्षदेव की भावना की जाय, तो हम इन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उपाधि से भूषित पायेंगे। माता जन्म देती है इसलिए ब्रह्मा है, पिता पालन यानि पोषण करते हैं इसलिए विष्णु हैं तथा गुरु हमारे अन्दर के कुसंस्कारों का संहार करते हैं इसलिये शंकर हैं।

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है, पिता ही परम तप है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सभी देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं।

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥[3]

माता सर्वतीर्थस्वरूप, पिता सर्वदेवस्वरूप हैं, इसलिये माता-पिता की पूजा करनी चाहिये। जो माता पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल मिलता है। इसके सर्वोत्तम सन्दर्भ गणेशजी हैं। माता-पिता की पूजा से मनुष्य जिस धर्म को प्राप्त कर लेता है, वह हजारों यज्ञ एवं तीर्थयात्राओं से भी प्राप्त नहीं होता।[4]

तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षावल्ली के एकादश अनुवाक में कहा गया है—

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमादितव्यम्।

'अग्निहोत्ररूप और यज्ञादिअनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्य के सम्पादन में कभी भी आलस्य या अवहेलनापूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिये।' पुनः अगले श्लोक में—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयामसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया भिया देयम्। संविदा देयम्।[5]

इसका भावार्थ है— 'तुम माता और पिता में देवबुद्धि यानि देवस्वरूप समझने वाले बनो।आचार्य को देवस्वरूप और अतिथि को देवतुल्य समझने वाले बनो। जो-जो निर्दोष कर्म हैं; उन्हीं का सेवन करना चाहिये। दूसरे जो दोषयुक्त कर्म हैं उनका आचरण कभी भी नहीं करना चाहिये। हमारे जो-जो अच्छे आचरण हैं उनका ही तुम्हें सेवन करना चाहिये। जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ (गुरुजन, ब्राह्मण) हैं, उनको तुम्हें आसनादि के द्वारा सेवा करनी चाहिये, उन्हें विश्राम दें, श्रद्धापूर्वक दान दें; बिना श्रद्धा के दान नहीं देना चाहिये। किन्तु आर्थिक स्थिति के अनुसार ही देना चाहिये। लज्जा से दे, भय से दे या जो कुछ भी दिया जाय, वह सब विवेकपूर्वक देना चाहिये।' श्रुति कथन है— जन्मदाता, उपनयन देने वाला, विद्या प्रदान करने वाला, अन्नदाता और भय से रक्षा करने वाला —इन पाँच व्यक्तियों को पिता की श्रेणी में परिगणना होती है। मनुस्मृति का कथन है— दस उपाध्यायों में एक आचार्य, सौ आचार्यों में एक पिता और हजार पिताओं में एक माता गौरव में बड़ी है।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥[6]

माता-पिता ने जो सेवा, वात्सल्य हमपर लुटाया है, इसका बदला हम उन्हें सात जन्मों में भी नहीं लौटा पायेंगे। लेकिन जब वही माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं, तब आज के आधुनिक युवा दम्पति उन्हें अपने ऊपर बोझ समझने लग जाते हैं। एक मातापिता अपने बच्चों को पोषण दिया, पढ़ाया-लिखाया, उन्हें अपने पैरों पर

3 पद्मपुराण सृष्टिखण्ड, 47.9
4 पद्मपुराण सृष्टिखण्ड, 47.8
5 तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11
6 मनुस्मृति 2.145

खड़ा किया, उनको रहने के लिये घर-आवास की सुविधाएँ दी, सुख-दु:ख में छात्रछाया बनकर खुद उनके दु:ख-दर्द को अपने ऊपर झेला। वही आज के युवा अपने वृद्ध माता-पिता को स्वयं ही वृद्धाश्रम में पहुँचा कर इस सेवा-दायित्व से मुक्त होने में नहीं कतराते। कुछ लोग तो अपने माता-पिता को वृद्धावस्था में गृहत्याग करके कहीं चले जाने को भी कह देते हैं, वे कहाँ रहेंगे, कैसे जीवन बसर करेंगे —इसकी चिन्ता उन्हें कतई नहीं। जो माता-पिता अपने एकाधिक बच्चों को पाला-पोसा, वे सभी मिलकर भी अपने माता-पिता को साथ रखने में कतराने लगते हैं। माता-पिता तो सबसे उत्तम देवमन्दिर के जीवित विग्रह के समान हैं। मनुष्य के स्वयं की उत्पत्ति का मूल उसका पिता-माता ही होते हैं, जो जन्मदाता होते हैं; वे भगवत्-सदृश होते हैं। पालनकर्ता पिता होने के कारण वह पिता प्रजापतिरूप में ईश्वरमूर्ति ही हैं। जो मातापिता की सेवा और आज्ञापालन न कर उनके विपरीत आचरण करते हैं, उनकी लोकनिन्दा ही होती है।

नीति वाक्य है— पिता के द्वारा डाँटा गया पुत्र, गुरु के द्वारा शिक्षित किया गया शिष्य और सुनार के हथौड़े से पीटा गया स्वर्ण— ये सभी आभूषण बनते हैं या लोकसम्मानित होते हैं। पौराणिक एवं आधुनिक इतिहास में ऐसे लोगों के कुकृत्य भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपने जीवित पिता को कैदखाने में डालकर स्वयं राजसत्ता हथिया ली उदाहरण— कंस, कोई अपने पिता की हत्या कर कलंक की कालिमा लेकर सम्राट बन बैठा उदाहरण— अधिकांश मुग़ल शासक। ऐसे कथानक से हमें सीख लेनी चाहिये, क्योंकि ये घटनाएँ हमें शिक्षित भी करते हैं। वहीं हमारे बीच श्रवणकुमार की कथाएँ भी प्रचलित हैं, जिन्होंने अपने वृद्ध एवं ज्ञानचक्षु मातापिता को अपने कंधे पर बिठाकर तीर्थयात्रा करवाते हुए आदर्श मातृ-पितृ भक्ति का ध्वजवाहक बन बैठा, जिसके कारण श्रवणकुमार की कीर्ति आज भी विख्यात है।

श्रीराम की पितृभक्ति

लोकहित के लिये मर्यादावतार लेने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी माता कैकेयी का कहना मानकर पिता को आदर्श मानकर मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में लोक वन्दित हुए। धर्म के पालन से मृत्यु का वरण कर लेने वाला पुण्यभागी होता है। श्रीराम का अपने पिता राजा दशरथ के प्रति कथन है—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
क्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।[7]

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥[8]

'मैं महाराज के कहने पर अग्नि में कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान भी कर सकता हूँ, समुद्र में भी गिर सकता हूँ। क्योंकि जैसी पिता की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करना है, इससे बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं है।' पुनः अपनी माता कौसल्या से भी कहते है —

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥[9]

'मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रखकर आपसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ कि मुझमें पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है। अतः मैं वन को जाना चाहता हूँ।' श्रीराम ने लोककल्याण के लिये वनगमन कर मातृ-पितृभक्ति का अनुपम और अनुकरणीय उदाहरण बनकर लोकशिक्षण किया। ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण हमें बार-बार सोचने को विवश कर देते हैं कि श्रीराम ने इन विकट स्थिति का सामना

7 वाल्मीकि रामायण 2.18.28-29, गीताप्रेस संस्करण
8 वाल्मीकि रामायण 2.19.22, उपरिवत्
9 वाल्मीकि-रामायण 2.21.30, उपरिवत्

कितनी आसानी से द्वेष एवं इर्ष्यारहित होकर, नम्र बनकर किया। श्रीराम के जीवन प्रसंग के अनेक सुकृत सबों के लिये युगों-युगों तक अनुकरणीय रहेंगे।

नचिकेता की पितृभक्ति

सामान्यतः नचिकेतस् का शब्दार्थ– अग्नि (विशेषण) के रूप में होता है। कठोपनिषद् के शांकर भाष्य में आचार्य शंकर ने यम और नचिकेता को समानरूप से भक्तिमय होकर प्रणाम निवेदन किया है–

ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ब्रह्मविद्या-चार्याय नचिकेतसे च।

कठोपनिषद् का आरम्भ एक प्रसिद्ध कथानक से होता है; जब यज्ञफल के इच्छुक वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस (उद्दालक) ने विश्वजित्-यज्ञ में अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया। इन्हीं का एक पुत्र था– नचिकेता। इस यज्ञ में दक्षिणास्वरूप जब गाएँ दी जा रही थी, तब उनमें ऐसी भी गौएँ थी जो जराजीर्ण थी। तभी इस छोटे बालक नचिकेता में आस्तिक्यबुद्धि का आवेश प्रवेश कर गयी और अपने पिता के प्रति विचार करने लगा– जो गौएँ अन्तिम बार जल पी चुकी है, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया है, जिसका दूध अन्तिम बार दुह लिया गया, जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट (प्रजननशक्ति का ह्रास) हो गयी हैं, ऐसे गौओं को दान करने वाला दाता आनन्दशून्य लोक को जाता है। धर्मानुसार नचिकेता अपने पिता को इस अनिष्टकारी परिणाम से बचाना चाहता था। इसी निश्चय से अपने पिता से कहा –हे तात! मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देंगे ? इस प्रकार दुबारा-तिबारा कहने पर ऋषि पिता को क्रोध आ गया और आवेशित होकर कहा–

तम् होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति।[10]

जाओ ! मैं तुझे मृत्यु (सूर्यपुत्र) को देता हूँ।

अब नचिकेता अपने पिता के आज्ञानुसार यमलोक को प्रस्थान कर यमदेव के घर तीन रात्रि तक टिककर इनकी प्रतीक्षा करता रहा।

अपने प्रवास से लौटने पर यमदेव ने उस ब्राह्मण-बालक नचिकेता का यथोचित सत्कार भी किया और कहा– हे ब्राह्मण! आपने मेरे घर तीन रात्रि तक बिना भोजन किये मेरी प्रतीक्षा करते रहे, अतः एक-एक रात्रि के लिये आप मुझसे तीन वर माँग लें।

नचिकेता तीन वरों में से पहला माँगता है– हे मृत्यो! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्त, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जाँय और मुझसे पहले के जैसा ही स्नेह दें।

इसके बाद द्वितीय वर में स्वर्गसाधनभूत अग्निविद्या का रहस्य जानने एवं तृतीय वर के रूप में आत्मरहस्य (आत्मज्ञान) को जानने की जिज्ञासा की। इसने अग्निविद्या और आत्मरहस्य नामक दोनों विद्याओं को तत्त्वतः जानकार वापस अपने पिता के पास आया। इस प्रकार नचिकेता अध्यात्म के पृष्ठ पर पितृभक्ति के उदाहरण के रूप में सदा के लिये अंकित हो गया।

मातृ-पितृ सेवक भक्त पुण्डरीक

माता-पिता के परमसेवक भक्त पुण्डरीक अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा में लगे ही रहते थे। जब ये अपने माता-पिता की सेवाकार्य में लगे ही थे कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त पुण्डरीक को दर्शन देने के लिये दरवाजे पर खड़े हो गये और पुण्डरीक को अपने पास बुलाने लगे। पुण्डरीक ने कहा– प्रभो ! मैं इस ईंट को सरकाये दे रहा हूँ, उसी पर आप खड़े हो जाँय, मैं तो अभी आ नहीं पाऊँगा क्योंकि मैं अभी मातापिता की सेवा कर रहा हूँ। भगवान् तो सर्वदर्शी हैं, पुण्डरीक के इस सेवाकार्य को देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये। इधर भगवान् दरवाजे पर ईंट पर खड़े हुए

10 कठोपनिषद् 1.1.4.

अपने दोनों हाथों को कमर पर रखे हुए प्रतीक्षारत थे कि कब पुण्डरीक आये। मातापिता की सेवा के पश्चात् पुण्डरीक भगवान् के पहुँचे, तभी पुण्डरीक पर प्रसन्न होते हुए वरदान माँगने को कहा, पुण्डरीक ने कहा— प्रभो! आप सदा इसी स्थान पर इसी मुद्रा में विराजें। तब से प्रभु भगवान् विट्ठल के श्रीविग्रह रूप में विराजमान हैं।महाराष्ट्र के भीमानदी (चन्द्रभागा) के पास पण्डरपुर (या पंढरपुर) में भगवान् श्रीविष्णु की मूर्ति विट्ठलेश के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् विट्ठलेश अपने कमर पर दोनों हाथ रखे खड़े हैं। साथ में श्रीरखुमाई (रुक्मिणीजी) का भी मन्दिर है। अतः इस धाम के प्रतिष्ठाता भक्त पुण्डरीक हैं। इसी मन्दिर में चोखामेला की समाधि, नामदेवजी की समाधि एवं द्वारका के एक और भक्त अखाभक्त की मूर्ति है।

महात्मा मूक की सेवा

ऋषि पुलस्त्य का कथन है— माता सर्वतीर्थमयी और पिता सम्पूर्ण देवताओं के प्रतीक हैं। इनकी सेवा से समस्त धर्मफल और तीर्थफल की प्राप्ति होती है। यदि कोई माता-पिता की सेवा को छोड़कर देवसेवा या तीर्थसेवन करने जाय, तो वह निष्फल माना जाता है।

इस संदर्भ में एक कथा है— पूर्वकाल में नरोत्तम नाम का एक ब्राह्मण था। यह खान-पान, धर्म-कर्म आदि में नियन्त्रण कर जीवन-निर्वाह कर रहा था। अपने पुण्य -प्रभाव से उसके कपड़े आकाश में ही अपने आप सूखा करते थे। इससे उसमें थोड़ा अहंभाव आ चला था कि मेरे समान कोई तपस्वी नहीं।

एकबार अपने माता-पिता की सेवा को छोड़ तीर्थाटन करने चला। एक दिन रास्ते में चलते समय एक बगुले से नरोत्तम के ऊपर बीट कर दी, जिससे नरोत्तम क्रोधित होकर बगुले को शाप दे दिया, जिससे बगुले मृत्यु हो गयी। अब नरोत्तम स्वयं को महान् समझने लगा।

तभी आकाशवाणी हुई— तुम महात्मा मूक नामक चाण्डाल के पास जाकर मिलो। मूक के घर जाकर नरोत्तम देखता है कि मूक का घर बिना भित्ति के भी आकाश में टीका हुआ है। वह अपने माता-पिता की सेवा में व्यस्त था। नरोत्तम ने मूक से कहा— तुम मेरे पास आकर मेरे हित की बात करो। मूक ने कहा— आप मेरे अतिथि हैं, आपका स्वागत करूँगा, लेकिन अपने माता-पिता की सेवा करने के बाद। नरोत्तम को क्रोध आ गया और कहा— ब्राह्मण-सेवा से बढ़कर और कौन सेवा हो सकती है? इसलिये मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। मूक ने कहा— मैं बगुला नहीं, जो आप मुझे शाप देकर भस्म कर देंगे। आप आकाशवाणी सुनकर मेरे पास आये हैं। यह सुनकर नरोत्तम को ज्ञान हो गया कि माता-पिता की सेवा से ही अपना उद्धार सम्भव है। यह कथा पद्मपुराण से सम्बन्धित है।

गणेशजी की मातृपितृभक्ति

श्रीशिवपुराण[11] का आख्यान है, एकबार भगवान् शिव और भगवती शिवा अपने दोनों प्रियपुत्र षण्मुख और गणेश के विवाह के लिये एक अद्भुत युक्ति रची। दोनों को बुलाकर कहा— तुमदोनों समान भाव से मेरे प्रिय हो, तुम दोनों में से जो कोई भी सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा कर पहले आयेगा, उसीका विवाह पहले किया जायेगा।

दोनों ही विवाह के लिये लालायित थे। महाबली कार्तिकेय तो शीघ्रता से परिक्रमा को निकल गये, किन्तु गणेशजी क्या करें?— यह सोचने लगे।

गणेशजी ने अपने माता-पिता को एक आसन पर बिठाया, विधिवत् पूजन की और सातबार परिक्रमा कर सात बार प्रणाम किया एवं स्तुति भी की और कहा-

11 शिव पुराण, रूद्रसंहिता, कुमारखण्ड,19

मेरी धर्मसम्मत बाते सुनें; मैंने सात बार पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली है। भगवान् ने कहा- तुम तो गये ही नहीं और कह रहे हो, सात बार परिक्रमा कर डाली! तब गणेशजी कहते है-

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांन्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्॥
अपाह्य गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥[12]

अर्थात् 'जो माता-पिता का पूजन कर परिक्रमा कर लेता है, उसे पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल निश्चित रूप से प्राप्त हो जाता है। जो माता-पिता को छोड़कर तीर्थस्थान को जाता है, उसे लिये वह पाप के बराबर है, जो उनदोनों का वध करने से लगता है। माता-पिता का चरण-कमल ही पुत्र के लिये महान् तीर्थ हैं, अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते हैं। यह तीर्थ सन्निकट रहने वाला है, सभी प्रकार से सुलभ और धर्मों का साधन है। पुत्र के लिये माता-पिता और स्त्री के लिये पति ही घर में सर्वोत्तम तीर्थ है।'

यह सुनकर भगवान् शिव एवं देवी शिवा ने कहा- जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल भी है। तुमने सम्यक प्रकार से धर्मपालन किया है, तुम्हारी बातें हमदोनों ने विचार कर मान ली है। ऐसा कहकर गणेशजी के विवाह के लिये विचार करने लगे।

इस प्रकार हमारे ग्रन्थों में ही नहीं बल्कि आज भी व्यावहारिक रूप में भी ऐसे मातृ-पितृसेवी मिलते रहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण तो मात्र अनुकरणीय संकेतक हैं। विस्तारभय के कारण संकेतरूप में यह जानना चाहिये कि मार्कण्डेय पुराण में महाभाग रुचिकृत 'पितृस्तुति', गरुड़पुराण के आचारखण्ड में अध्याय-89 में 'पितृस्तुति एवं इसका माहात्म्य', ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 15 वें सूक्त की 1-14 तक की ऋचाएँ 'पितृ-सूक्त' के नाम से जानी जाती है।

***

12 शिवपुराण, रुद्रसंहिता 19.39-42

आसाम की अहोम जनजाति प्रत्येक वर्ष 31 जनवरी को अपने पितरों की स्मृति में मे-डैम-मे-फी मनाते हैं।

स्रोत :

https://www.sentinelassam.com/north-east-india-news/assam-news/me-dam-me-phi-to-be-celebrated-all-over-assam-on-january-31-522396